भगवत्पाद

श्री शङ्कराचार्य विरचिता

सौन्दर्य-लहरी

आनन्द लहरी

हिन्दी

(पद्यानुवाद – सहिता)

अनुवादक

साहित्य – भूषण

श्री बलवीर सिंह फौजदार

दतिया (म.प्र)

प्रकाशक

श्री पीताम्बरापीठ,

दतिया (म.प्र.)

भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य विरचिता

सौन्दर्य-लहरी

* आनन्द लहरी *

हिन्दी

(पद्यानुवाद-सहिता)

●

अनुवादक

साहित्य-भूषण

श्री बलवीर सिंह फौजदार

दतिया (म.प्र.)

●

प्रकाशक

श्री पीताम्बरापीठ, दतिया (म. प्र.)

प्रकाशक :

श्री पीताम्बरापीठ, दतिया (म.प्र.)

तृतीय संस्करण :

संवत् २०६१

सन् – २००४

मूल्य :

२०/- रुपये

मुद्रक :

शिवशक्ति प्रेस प्राइवेट लिमिटेड

ग्रेट नाग रोड, नागपुर-९

निवेदन

भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य की 'सौन्दर्य-लहरी' श्री विद्या ललिता महात्रिपुरसुन्दरी का एक महत्वपूर्ण सिद्ध स्तोत्र तो है ही-त्रिपुरागम सिद्धान्त का रहस्यमय सुन्दर दार्शनिक काव्य भी है। इसका महत्व इससे सहज ही अवगत हो जाता है कि संस्कृत में इस स्तोत्र पर अनेक विद्वानों की टीकाएँ एवं व्याख्याएँ सुलभ हैं। यथा लक्ष्मीधर की 'लक्ष्मीधरी', कामेश्वर सूरि की 'अरुणामोदनी', कैवल्याश्रम की 'सौभाग्य वर्द्धिनी', रामकवि की 'डिमडिम', नरसिंह ठाकुर की 'गोपालसुन्दरी' इत्यादि। इसकी एक टीका सुरेश्वराचार्य की भी है जो श्रृङ्गेरी मठ के पुस्तकालय में सुरक्षित है। आचार्य भास्कर राय की टीका का भी उल्लेख पाया जाता है पर वह प्राप्त नहीं है।

हिन्दी, गुजराती मराठी, इसकी व्याख्याएँ हैं। अंग्रेजी में भी इस पर कई टीकाएँ एवं स्वतन्त्र लेख हैं। हाल में ही लन्दन से प्रकाशित एक सौन्दर्य-लहरी मेरे देखने में आयी है, जिसमें अंग्रेजी टीका के अतिरिक्त संस्कृत के श्लोक दिये गये हैं और उन पर कुछ चित्र भी हैं।

हिन्दी ब्रजभाषा पद्यों में इसके दो एक अनुवाद हुए हैं, परन्तु खड़ी बोली की हिन्दी कविता में इसका कोई अनुवाद अभी तक मेरे देखने में नहीं आया। 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक श्रद्धेय श्री पण्डित देवीदत्त जी के आदेशानुसार मैंने प्रस्तुत पद्यानुवाद खड़ी बोली में किया है। यह कैसा बना, वह तो हमारे विज्ञपाठक ही समझ सकते हैं। मैं इस विषय में क्या कह सकता हूँ? क्योंकि – **''निज कवित्त किहिं लाग न नीका''**।

श्रीयुत पण्डित रामनारायण जी वैद्य ने मेरे इस अनुवाद को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की जो कृपा की है, इसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। जगज्जननी भगवती से प्रार्थना है कि वह उनको सदैव प्रसन्न रखें।

अन्त में, मैं अपने उन सभी साहित्यिक बन्धुओं का आभारी हूँ जिन्होंने मेरे इस अनुवाद पर अपनी शुभ सम्मतियाँ प्रदान कर मुझे प्रोत्साहित किया है।

दतिया (म. प्र.) **– बलवीर सिंह**

दो शब्द

दतिया निवासी श्री बलवीर सिंह फौजदार जी के द्वारा किये हुये, सौन्दर्य-लहरी के पद्यानुवाद को मैंने उनके मुँह से कई बार सुना है। फौजदार साहब दतिया के एक ऐसे पुराने साहित्यसेवी हैं, जिनके द्वारा नगर के अनेक साहित्यकारों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिलता रहा है। वे ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों के ही रस सिद्ध कवि हैं। ऐसे कवि के इस सफल पद्यानुवाद का स्वागत होगा, इसमें सन्देह नहीं।

अनुवाद करने में फौजदार साहब ने मूल ग्रन्थ के भाव की पूरी पूरी रक्षा की है। कोई भी साहित्य प्रेमी इस सुयोग्य कवि के इस सुन्दर कार्य को देखकर आनन्दित हुये बिना न रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

डा. शिवशरण शर्मा,
एम.ए., डी.फिल. (एम.पी.ई.एस)
सहायक प्राध्यापक गर्व्ह. डिग्री कालेज, दतिया
पूर्व सदस्य सागर-विश्वविद्यालय कोर्ट

सम्मतियाँ

(१)

आज यहाँ (दतिया) के कविवर फौजदार श्री बलवीर सिंह जी की कविताएँ मैंने – कवि के ही मुख से सुनी। फौजदार जी हिन्दी के बहुत अच्छे कवि हैं। स्वतन्त्र रचनाओं के अतिरिक्त आपने संस्कृत रचनाओं के भी सुन्दर अनुवाद किए हैं। श्री शङ्कराचार्य की 'सौन्दर्य-लहरी' का सुन्दर अनुवाद आपने किया है, बहुत प्राञ्जल भाषा में। श्री जगद्धर भट्ट की 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' के 'कृपणक्रन्दन स्तोत्र' का भी अनुवाद आपने किया है। ये दोनों अनुवाद मैंने सुने। मुझे वे बहुत अच्छे लगे। ऐसा अनुवाद बहुत कम लोग कर पाते हैं। फौजदार जी कवि तो हैं ही, भगवती के उपासक भी हैं और इसीलिए ऐसा सुन्दर अनुवाद करने में सफल हुए हैं। क्या ही अच्छा हो कि आपकी कृतियाँ अच्छे ढङ्ग से प्रकाशित होकर हिन्दी संसार के सामने आएँ।

– किशोरीलाल बाजपेयी

(२)

'सौन्दर्य-लहरी' का अत्यधिक माहात्म्य है। यह एक सिद्ध स्तवराज है। यही कारण है कि इसकी कितनी ही व्याख्याएँ और टीकाएँ विद्वानों तथा महात्माओं द्वारा हो चुकी हैं। संस्कृत जानने वाले भक्तजन तो इसका नियमित रूप से पाठ किया करते हैं। जो संस्कृत नहीं जानते, उनकी सुविधा के लिए दतिया निवासी कवि-शिरोमणि श्री फौजदार बलवीर सिंह ने हिन्दी पद्यानुवाद प्रस्तुत कर दिया है, जिसके लिए उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

– देवीदत्त शुक्ल

भू.पू. सरस्वती सम्पादक

दतिया-निवासी श्री बलवीर सिंह ने 'सौन्दर्य-लहरी' का हिन्दी पद्यानुवाद बड़ा ही सरस किया है। सौन्दर्य-लहरी तान्त्रिक जीवन-दृष्टि की सबसे रसमयी अभिव्यञ्जना है। ऐसी गम्भीर और सरस रचना का हिन्दी अनुवाद बहुत ही दुस्साध्य कार्य है, इसके लिए काव्य की क्षमता और संस्कृत के अभ्यास के अलावा एक गहरी अन्तर्दृष्टि अपेक्षित है। श्री बलवीर सिंह को यह अन्तर्दृष्टि श्री स्वामी जी की कृपा से सुलभ हो गई, इसलिए यह अनुवाद इतना सुन्दर और शक्तिशाली बन पड़ा है।

मैं इस अनुवाद के लिए श्री बलवीर सिंह जी को साधुवाद देता हूँ।

– विद्यानिवास मिश्र
संस्कृत-विभाग, गोरखपुर
विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(४)

श्री शङ्कराचार्य-रचित 'सौन्दर्य-लहरी' का यह अनुगुण अनुवाद है। अनुवाद-कर्ता श्री बलवीर सिंह जी हिन्दी के सुयोग्य वयोवृद्ध कवि हैं। अनुवाद के विषय में मेरी सम्मति निम्नलिखित शिखरिणी वृत्त में है –

रस-स्निग्धा, मुग्धा, सरसमसृणा-शङ्कर-कृति,
सुखच्छन्दा, मन्दाकिनि-सदृश 'सौन्दर्य-लहरी'।
उसी की है हिन्दी मधुर मधु-बिन्दी-सम यही –
कला-स्त्रोतःशीला, कल कलम-लीला सुकवि की।।

– पं. बदरीदयालु शुक्ल 'सुधाकर', शास्त्री,
एम.ए., काव्य-तीर्थ प्राचार्य-गर्व्ह.
हायर सेकण्डरी स्कूल सेंउड़ा
(दतिया) म.प्र.

(५)

सौन्दर्य-लहरी एक अमूल्य दार्शनिक निधि है, जिसने विद्वानों में अच्छी ख्याति अर्जित कर रखी है। फौजदार श्री बलवीर सिंह जी 'साहित्य-भूषण' ने संस्कृत के कतिपय ग्रन्थ रत्नों का पद्यानुवाद प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। इस बहुचर्चित ग्रन्थ का पद्यानुवाद भी उनमें से यह एक है। मुझे हर्ष है कि इस अनुवाद की भाषा प्राञ्जल और गुण सम्पन्न है तथा मूल की योग्य व्यंजना में समर्थ हुआ है। इस सफल अनुवाद के लिये बधाई प्रस्तुत करता हूँ।

– हरिमोहनलाल श्रीवास्तव,
एम. ए., एल.एल.बी., एल. टी.
– सदस्य, पी. ई. एन., दतिया (म. प्र.)

(६)

जगद्गुरु स्वामी श्री शङ्कराचार्य की 'सौन्दर्य-लहरी' संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधि है। जो लोग संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ हैं, वे उसके हिन्दी अनुवाद का सहारा लेते हैं। गद्य के द्वारा वह रसात्मकता नहीं आ पाती, जो पद्य की विशेषता में निहित होती है। इसलिए ऐसे सरस ग्रन्थों के रस को पाने के हेतु मौलिक रचना के उपरान्त उसका पद्यानुवाद ही ठहरता है।

श्री बलवीर सिंह जी सिद्धहस्त कवि हैं और इन्होंने संस्कृत से अन्य स्तोत्रग्रन्थों के भी पद्यानुवाद प्रस्तुत किये हैं। इस साधना में इनकी लेखनी सधी हुई है। यही कारण है कि परिमार्जित और सुबोध शैली में इन्होंने इतना सफल और सरस यह पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है, जिससे पाठक को मूल सौन्दर्य-लहरी की छटा का आनन्द बोध सुलभ बन जाता है। हिन्दी-संसार इस योगदान के हेतु कवि का आभारी रहेगा।

– वासुदेव गोस्वामी
दतिया (म.प्र.)

कवि परिचय

नाम – श्री बलवीर सिंह

पिता – श्री पर्वतसिंह फौजदार

जन्मस्थल – दतिया (म. प्र.)

जन्माब्द – वि. सं. १९६०

पदवियाँ – साहित्य भूषण कुल मयंक आदि

कृतियाँ – सीमन्तिनी (खण्ड काव्य)
सुमनाञ्जलि (कविता-संग्रह)
छाया (कविता-संग्रह)
शिवानन्द लहरी (अनुवाद)
कृपणाक्रन्दन ''
यमुना लहरी ''
मणिरत्न माला ''
ईशोपनिषद् '' आदि

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्री अनन्तश्री स्वामी जी महाराज
पीताम्बरापीठ, दतिया (म. प्र.)
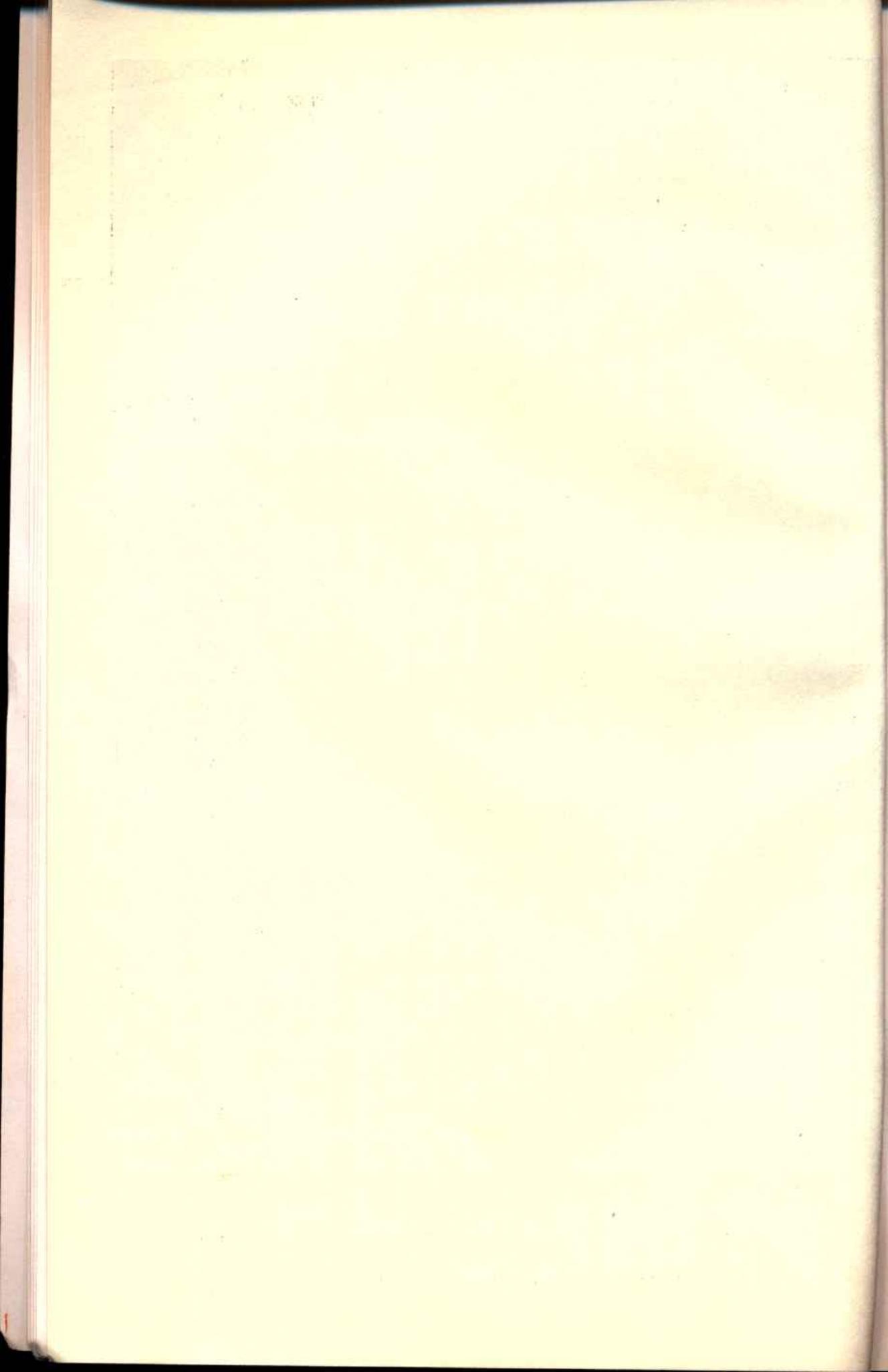
समर्पण

विधि हरि-शंकर देव-मय, निष्कल, सकल अनाम।
नमो नमः श्री राष्ट्रगुरु, स्वामि चरण सुखधाम।।

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य निगमागमाद्यखिलशास्त्र पारावार पारीण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र योगीन्द्र राष्ट्रगुरु श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज, श्री पीताम्बरा पीठ, दतिया (म. प्र.)

महर्षे!

निर्बल हो जाने से तनु से, चंचल होने से मन से -
हो न सकी स्वामिन! तब सेवा किसी तरह भी इस जन से!

अतः, दीन-गण-मनो भीष्टकर हैं त्वदीय जो युगल चरण,
उन पर ही 'सौन्दर्य लहरि' का यह अनुवाद-कमल अर्पण।

चरण-रज-सेवक
बलवीरसिंह

सौन्दर्य-लहरी

❋ आनन्द लहरी ❋

हिन्दी

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्च्यादिभिरपि।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।१।।

तनीयांसं पांसुं तव चरणपंकेरुहभवं।
विरञ्चिः संचिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्।।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां।
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्।।२।।

अविद्यानामन्तस्तिमिर - मिहिर - द्वीप - नगरी।
जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिझरी।।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ।
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती।।३।।

सौन्दर्य-लहरी

❋ आनन्द लहरी ❋

हिन्दी

शिव यदि शक्ति-सहित है, तो है करने में सब कार्य समर्थ।
और नहीं जो, केवल हैं, तो हैं निष्क्रिय, निस्पन्दित व्यर्थ।।
अतः तुम्हीं विधि-हरि-हरादि से हो निश्चय आराधन योग्य।
अकृत-पुण्य जन कर सकता फिर कैसे तव नुति-प्रणति मनोज्ञ।।१।।

देवि! तुम्हारे पद-पद्मों के किञ्चित् रज-कण को पाकर।
रचते ब्रह्मा विविध भांति के अविकल लोकों को सुन्दर।।
धारण करते जिन्हें शेष हो विष्णु सहस्रों मस्तक पर।
तथा भस्म कर जिन्हें; स्वतनु पर उद्धूलन हैं करते हर।।२।।

मूढ़ों के हो हृदय तिमिर को तुम रवि-द्वीप-स्थित नगरी।
जड़ जन को चैतन्य-प्रसून-स्तवक-परागोल्लास-झरी।।
दीनों को चिन्तामणि-माला, जन्म-मरण-भव-पारावार–
मग्नों को मुर रिपु वराह की दंष्ट्रा हो, करती उद्धार।।३।।

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण -
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं,
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ।।४।।

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं,
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा,
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्।।५।।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्चविशिखाः,
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपा -
मपांगात्ते लब्ध्वा जगदिदमनंगो विजयते।।६।।

क्वणत्काञ्ची दामा करिकलभकुम्भस्तननता।
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना।।
धनुर्वाणान्पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः।
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहौपुरुषिका।।७।।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।।
शिवाकरे मञ्चे परमशिवपर्यंकनिलयां।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरी।।८।।

तुमसे अन्य देवगण देते हाथों से वर और अभय।
एक तुम्हीं पर कभी न करती वराभीति का यह अभिनय।।
भव-भय-हरने में, करने में वांछा-समधिक फल का दान।
शरणदायिनी! चरण तुम्हारे परम निपुण हैं करुणावान।।४।।

भक्तों को सौभाग्य-प्रदायिनी! तव आराधन कर कमलेश–
पुराकाल में नारी होकर, किया शम्भु को क्षुब्ध विशेष।।
तुम्हें नमन कर, त्यों रति-नयनास्वादित-अति सुन्दर तनुधार।
बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के भी मन को मोहित करता मार।।५।।

भ्रमरों की मौर्वी का जिसका पुष्प-धनुष है, जिसके बाण-
कुसुमों के हैं पाँच, मलय मारुत है जिसका सङ्गर-यान।
है सामन्त वसन्त, तदपि, पा तवापाङ्ग की कृपा अभङ्ग,
हिमगिरि कन्ये! विजयी होता इस जग पर वह एक अनङ्ग।।६।।

मुखरित काञ्ची कृश कटि शोभित, करि-कलभों के कुम्भ-समान-
कुच युग से कुछ झुकी हुई, मुख शरच्चन्द्र से सम छविमान।।
चारों कर-कमलों में धारे अद्भुत पाशांकुश-धनु-बाण।
करै शम्भु-पुरुषत्व-बोधिनी हमें सरा निज दर्शन-दान।।७।।

सुधा-सिन्धु के मध्य कल्पवृक्षों की बाटी से वेष्टित–
मणिद्वीप में नीप बनों के चिन्तामणि-गृह में सज्जित–
शिवाकारा-मंच-स्थित परशिव-पर्यङ्कोपरि शोभावान।
चिदानन्द-लहरी, तुमको हैं भजते कोई धन्य सुजान।।८।।

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।९।।

सुधा-धारा-सारैश्चरण-युगलान्तर्विगलितैः ।
प्रपञ्च सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा।।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिपि कुलकुंडे कुहरिणि।।१०।।

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि।
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।।
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदल- कलाब्ज-त्रिवलय-।
त्रिरेखाभिः सार्द्धं तव भवनकोणाः परिणताः।।११।।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं।
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरञ्चिप्रभृतयः।।
यदा लोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा।
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्।।१२।।

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं।
तवापांगाल्लोके पतितमनुधावन्ति शतशः।।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचयाः।
हठात्त्रुट्यत्कांच्यो विगलितदुकूला युवतयः।।१३।।

मूलाधार-स्थित भू को, मणिपूर-स्थित जल, स्वाधिष्ठान-
मध्य अग्नि को, हृदि मारुत को, उसके ऊपर गगन निदान।।
भृकुटि-मध्य में मन को, यों कर भेदन सब कुल चक्र नितान्त।
सहस्रारपङ्कज में पति-सँग करती हो विहार एकान्त।।९।।

युगल चरण-कमलों से निकली परमामृत-धारों से तूर्ण।
करती हुई देह का सिञ्चन, पुनः षडाम्नायों से पूर्ण।।
कर स्वभूमि को प्राप्त, मुदित तुम सार्ध त्रिवलय सर्पाकार-
निज स्वरूप धारण कर, कुहरिणि! सो जाती कुल कुण्डाधार।।१०।।

शिव के चार त्रिकोण, शक्ति के पाँच त्रिकोणों से अविकल।
शम्भु भिन्न नव मूल प्रकृति के तैंतालिस त्रिकोण वसुदल।।
षोडश दल, त्रिवलय, भूपूर की रेखा चतुर्द्वार समवेत।
तव 'श्रीचक्र' नाम का निर्मित होता सुन्दरि! दिव्य निकेत।।११।।

हिम-गिरि तनये! तुलना करने को अतिशय सौन्दर्य त्वदीय।
ब्रह्मा-प्रमुख सुकवि करते हैं विविध कल्पनाएँ कमनीय।।
जिसे देख, उत्कण्ठा से दुष्प्राप्य कठिन तप के द्वारा।
'शिव-सायुज्य-सुपदवी' को निज मन से पाती सुर-दारा।।१२।।

जो अति वृद्ध, महाकुरूप हैं, केलि-कला में हैं जड़ दीन।
कृपा-कोर तव हो जाने से, हठ से उनके संग प्रवीण।।
खुले केश हैं जिनके, टूटी काञ्ची, कुच कंचुकी-विहीन।
दौड़ा करती ऐसी शतशः विगलितवसना युवति नवीन।।१३।।

क्षितौ षट्पञ्चाशत् द्विसमधिकपञ्चाशदुदके।
हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले।।
दिवि द्विःषट्त्रिंशन्मनसि च चतुःषष्टिरिति ये।
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्।।१४।।

शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां।
वर – त्रासत्राण – स्फटिकघुटिका – पुस्तककराम्।।
सकृन्नत्वा न त्वां कथमिव सतां सन्निदधते।
शधु-क्षीर-द्राक्षा-मधुरि-मधुरीणा-भणितयः ।।१५।।

कवीन्द्राणां चेतःकमलवनबालातपरुचिं।
भजन्ते ये सन्तःकतिचिदरुणामेव भवतीम्।।
विरिञ्चि-प्रेयस्यास्तरुण- तर-शृङ्गार-लहरी-
गंभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी।।१६।।

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभंगरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभित्वां सह जननि संचिन्तयति यः।
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भंगिसुभगै-
र्वचोभिर्वाग्देवी- वदन-कमलामोद-मधुरैः।।१७।।

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीसरणिभिः।
दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः।।
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयना:।
सहोर्वश्या वश्याः कति कति न गीर्वाणगणिकाः।।१८।।

भू में छप्पन, बावन जल में, वह्नि वायु बासठ चउअन।
तथा बहत्तर नभ में, चौंसठ मन में हैं जो कान्त किरण।।
उनके ऊपर नवल कमल-सम युगल चरण हैं तव उपनीत।
(यानी, तुम ही तत्वमयी हो और तुम्ही हो तत्वातीत)।।१४।।

स्वच्छ शरज्ज्योत्स्ना-सी शुभ्रा, जटाजूट शशि-मुकुट विशाल।
चारों कर में लिये वराभय, पुस्तक एवं स्फटिक-सुमाल।।
तुमको बिना सकृत नमन कर कैसे पा सकता विद्वान?
महा मधुर मधु-पय-द्राक्षा-सी सत्कवियों की सूक्ति महान।।१५।।

कविवर चित्त कमल-धन को नित बाल सूर्य की कांति समान-
अरुण स्वरूपा तुमको कोई जो कवि भजते हैं मतिमान।
सरस्वती की परम नवीना मधु शृङ्गार-लहरी गम्भीर-
वाणी से मन रञ्जन करते सन्तन सुजनों का वे धीर।।१६।।

सुन्दर शुभ्र देहद्युति शोभित चन्द्रकान्त मणि शिला समान।
वशिन्यादि के सहित तुम्हारा मातः! जो करता है ध्यान।।
वाग्देवी मुख कमलामोदित सुन्दर वचनावली-प्रपूर्ण-
सरस सूक्तियों से होता वह महाकाव्य का कर्त्ता तूर्ण।।१७।।

तरुण सूर्य की कान्ति-सदृश तव तनु छाया-लाली में मग्न।
रक्तवर्ण-मय भूमि-स्वर्ग का चिन्तन जो करता संलग्न।।
भय-भीता-वन-हरिणी नयना सुरगण-गणिकाएँ अभिराम।
वशीभूत उर्वशी-सहित वह कर लेता है त्वरित सकाम।।१८।।

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हरार्द्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलां।।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु।
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयतिरवीन्दुस्तनयुगां।।१९।।

किरन्तीमंगेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं।
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः।।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव।
ज्वरप्लुष्टान्दृष्ट्या सुखयति सुधासारसितया।।२०।।

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं।
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलां।।
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा।
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम्।।२१।।

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वांछन्कथयति भवानि त्वमिति यः।।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं।
मुकुन्द-ब्रह्मेन्द्र-स्फुट-मुकुट-नीराजित-पदाम् ।।२२।।

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा।
शरीरार्द्धं शम्भोरपरमपि शंके हृतमभूत्।।
यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं।
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटं।।२३।।

मुख को बिन्दु-रूप से, उसके नीचे युगल बिन्दु कुच मान।
उसके नीचे तीन कोण-युत कामकला का करके ध्यान।।
वनिताओं को करता है जो शीघ्र क्षुब्ध, यह तो लघु बात।
वह रवीन्दु-कुचमयी त्रिलोकी को विचलित करता है ख्यात।।१९।।

जो तनु-किरण पुञ्ज बिखेरती हुई सुधारस से अम्लान–
चन्द्रकान्तमणि शिलामूर्ति सी तुमको करता मन में ध्यान।।
वह सर्पों का दर्प-शमन है करता गरुड़-समान दुरन्त।
करता त्यों माँ? सुधा-दृष्टि से ज्वराकान्त को सुखी तुरन्त।।२०।।

विद्युल्लेखा के सम सूक्ष्मा रविशशि अग्निमयी द्युतिमान–
षट्चक्र-स्थित कमलों पर जो सहस्रार में धर कर ध्यान।
मायिक मलविरहितमन-योगीगण तव परम कला सउमङ्ग–
कर साक्षात् हृदय में धारण करते परमाह्लाद-तरङ्ग।।२१।।

'हे भवानि! तुम मुझ सेवक पर कीजे करुणादृष्टि-निपात।'
ऐसा कहकर, जो स्तुति करने की इच्छा करता मनुजात।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेन्द्र मुकुट-चय-नीराजित पद-पद्म महान–
निज सायुज्य-सुपदवी उसको करती हो तुम शीघ्र प्रदान।।२२।।

शिव वामाङ्ग हरण करके भी देवि! अतृप्त मन से फिर अन्य–
अङ्ग-हरण करने की इच्छा अहो! कर रही हो तुम धन्य।
अर्धचन्द्रचूडाल-मुकुट-मय, त्रिनयन, युग कुच नम्र विशाल–
रूप तुम्हारा, क्योंकि शम्भु में होता है प्रतीत यह लाल।।२३।।

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते।
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति।।
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव -
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः।।२४।

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे।
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता।।
तथाहि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे।
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमुकुटाः।।२५।

बिरञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं।
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनं।।
वितन्द्रा माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलित दृशां।
महासंहारेऽस्मिन्विहरित सति त्वत्पतिरसौ।।२६।

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं।
गतिः प्रादक्षिण्यभ्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशां।
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितं।।२७।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरणीं।
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः।।
करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना।
न शम्भोस्तन्मूलं जननि तव ताटंकमहिमा।।२८।।

तव क्षण-चलित भृकुटि लतिकाओं की आज्ञा का ले अवलम्ब।
जग रचते विधि, हरि पालन हैं करते रुद्र नाश, जगदम्ब।।
ईश्वर भी अपने शरीर का कर लेते हैं फिर अवसान।
तथा सदाशिव निज में धारण करते सबको अन्त निदान।।२४।।

तव युग चरणों की पूजा करने से त्रिगुण-जनित अविलम्ब–
तीनों देवों की पूजा भी हो जाती है पूरी अम्ब।
क्योंकि निकट, मणिपाद-पीठ जो धारण करता चरण त्वदीय।
सदा खड़े रहते ये जोड़े निज मुकुटों पर कर कमनीय।।२५।।

विधि पञ्चत्व-प्राप्त करते हैं, पाते हैं हरि परम विराम,
कवलित-काल, काल भी होता, पाते धनद विनाश निकाम।
त्यों इन्द्र की सहस्र दृष्टियाँ हो जाती चिर निद्रा-लीन,
ऐसे महाप्रलय में सति! तव पति करते विहार स्वाधीन।।२६।।

जप हो मेरा कथन, क्रियायें हो जावैं सब मुद्रा और –
चलना-फिरना प्रदक्षिणा हो, होवै भोजन आहुति ठौर।
निद्रा हो साष्टाङ्ग नमन मम सब सुख आत्मार्पण हो जाय,
मेरी सब चेष्टाएँ हों तव शिवे! समर्चन की पर्याय।।२७।।

जरा-मृत्यु-भय-हरनेवाला अमृत को करके नित पान,
विधि-इन्द्रादिक-अमर गणों को तजने पड़ते हैं निज प्राण।
किन्तु हलाहल विष पीकर भी कभी न होता शिव का अन्त,
यह तव कर्णभूषण-महिमा है द्योतक सौभाग्य अनन्त।।२८।।

किरीटं वैरिञ्च्यं परिहरपुरः कैटभभिदः।
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटं।।
प्रणभ्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं।
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते।।२९।।

चतुषष्ट्या तन्त्रैः सकलमभिसन्धाय भुवनं।
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरन्त्रैः पशुपतिः।।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषर्थैकघठना ।
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।।३०।।

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः।
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः।।
अभी हल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता।
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।।३१।।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-।
र्निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।।
भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुण-निबद्धाक्षबलयाः।
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराऽऽहुतिशतैः।।३२।।

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं।
तवात्मानं मन्ये भगवति भवात्मानमनघं।।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया।
स्थितः सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः।।३३।।

"विधि! किरीट को अलग हटाओ दूर करो हरि! मुकुट कठोर,
इन्द्र! मुकुट तुम पृथक करो"-त्यों करते हैं तव परिजन शोर।
ब्रह्मादिक के नमन-काल में आते जब तब भवन महेश,
उनके अभ्युत्थान-काल में – जय हो सखि-कथन-विशेष।।२९।।

सिद्धि-कामनावालों को, कर चौंसठ तन्त्रों का निर्माण,
शिव ने उलझा दिया जगत में, बतला उनको सिद्धि-विधान।
पर तव-आज्ञा से समस्त पुरुषार्थों का जो करता दान,
उस त्रैपुर स्वतन्त्र आगम को किया उन्होंने प्रकट निदान।।३०।।

'शंकर-शक्ति-अनंग-भूमि, रवि-शशि-कन्दर्प-हंस-देवेश',
'परा-मदन हरि' – इन तीनों के अन्त जोड़ 'माया' सविशेष।
जननि! तुम्हारे 'हादि' मन्त्र, के होते अवयव वर्ण प्रधान,
जप कर जिनको साधक पाते ब्रह्मादिक दुर्लभ निर्वाण।।३१।।

उक्त मन्त्र के प्रथम तीन वर्णों को करके पृथक सुजान,
योजित करके-'काम योनि-श्री' – महाभोग के रसिक महान।
चिन्तामणि-माला के द्वारा गो-घृत-धारा से विद्वान-
कर शिवाग्नि में होंम निरन्तर करते शतशः आहुति दान।।३२।।

शिव-शरीर हो, चन्द्र-सूर्य-वक्षोरुहवाली भगवति! आप,
तव आत्मा को एक मानता हूँ मैं शिव-आत्मा निष्पाप।
अतः, शेष-शेषी, इन दोनों में होने से एक समान,
समरसपरानन्द-स्वरूप-मय है तव युग सम्बन्ध महान।।३३।।

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा।
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन विभृषे।।३४।।

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं।
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।।
यमाराध्यन्भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये।
निरालोके लोको निवसति हि भालोकभवने।।३५।।

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं।
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसितां।।
ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणिं।
विधुतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगति।।३६।।

समुन्मीलत्सम्वित्कमलमकरन्दैकरसिकम् ।
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरं।।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणतिर्यदादत्ते
दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव।।३७।।

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं।
तमीडे सम्वर्तं जननि महतीं तां च समयां।।
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिते।
दयार्द्रा तेदृष्टिः शशिरमुपचारं रचयति।।३८।।

मनतुम, नभतुम, अनिल अनल तुम, जल-पृथ्वी हो तुम शिवधाम।
यह है नहीं अन्य का मातः! है तेरा ही सब परिणाम।
विश्व-रूप से तुम अपने को करती परिणत लीलागार!
तथा तुम्ही केवल रहती हो सदा सच्चिदानन्दाकार।।३४।।

तव आज्ञाचक्रस्थ कोटिशः सूर्य-चन्द्र के सम द्युतिमान,
परचिति-वाम-भाग-भय वन्दन करता परम शम्भु धर ध्यान।
जिनका कर सभक्ति आराधन रवि-शशि-अग्नि रहित स्वप्रकाश।
(निरालोकमय) साधक वर भा-लोक-भवन में करता वास।।३५।।

शिवे! त्वदीय विशुद्धचक्र में स्वच्छस्फटिक समान विशुद्ध-
व्योम जनक शिव तथा उन्हीं सम व्यवसित देवी भजूँ प्रबुद्ध।
जिनकी कान्ति हृदय-तम हारिणि चन्द्र-किरण की सरणि-समान,
जब जगती है देखा करती चारु चकोरी-सी मुद-मान।।३६।।

विकसित सम्वित्-रूपी सरसीरुह-पराग का रसिक प्रधान,
हंस-युग्म को भजूँ महज्जन-मानस में है जो रममाण।
जिसके सम्भाषण से होता अष्टादश विद्या-विस्तार,
गुण से दोष विलग करता त्यों वारि-दुग्ध-सा भले प्रकार।।३७।।

जो तव स्वाधिष्ठान चक्र में अग्निस्थित हैं संवर्त्तेश,
जननि! महासमया-युत उनको करता मैं प्रणाम सविशेष।
जिनके महा क्रोध करने पर जलने लगता जब संसार,
करती दयार्द्र-दृष्टि तुम्हारी तव उसका शीतल उपचार।।३८।।

तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया।
स्फुरन्नानारत्नाभरणपणिद्धेन्द्रधनुषम् ।।
तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं।
निषेवे वर्षन्तं हरिमिहिरतप्तं त्रिभुवनं।।३९।।

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया।
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटं।।
उमाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया।
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदं।।४०।।

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं।
किरीटं ते हैमं हिमगिरसुते कीर्तयति यः।।
स नीडेयच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं।
धनुःशौनासीरं किमिदमितिबध्नाति धिषणाम्।।४१।।

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं।
घनस्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरुम्बं तव शिवे।।
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो।
वसन्त्यस्मिन्मन्ये बलमथनवाटीविटपिनाम्।।४२।।

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर-
द्विषां वृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणं।।
तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी-
परीवाहस्रोतः सरणिरिव सीमान्तसरणिः।।४३।।

तिमिर-नाशिनी सदा शक्ति-मयि विद्य त-सम कलकान्ति-निधान-
नाना रत्नाभरण-विभूषित इन्द्रधनुष-सा प्रकट महान।
हर-रवि-सन्तापित त्रिभुवन को करता हुआ तृप्त अभिराम,
सेवन करूँ सुधा बरसाता मणिपूर-स्थित तव घनश्याम।।३९।।

लास्य-परायणि समया-सह नव रस-ताण्डव-कारी नटराज,
जो कि नवात्म-रूप से मूलाधार चक्र में रहे विराज।
जिन दोनों के दया भाव से माता-पिता-मय यह संसार–
होता है उत्पन्न, उन्हें मैं बन्दन करता बारम्बार।।४०।।

द्वादश रवि से सघन विनिर्मित, जो उत्तम माणिक्य-समान–
है तव हेम-मुकुट, गिरि-तनये! उसका जो जन करता गान–
उसे तुम्हारे भाल चन्द्र में इन्द्र-धनुष होता प्रतिभात,
क्योंकि, किरीट-कान्ति पड़ने से विविध भाँति वह होता ज्ञात।।४१।।

फुल्लेन्दीवर बन-सा जो मृदु घनस्निग्ध सौन्दर्य-निधान,
जिसकी सहज सुगन्धि-प्राप्ति को नन्दनकानन-सुमन प्रधान।
आ-आकर करते हैं निश्चय शिवे! सर्वदा जिसमें वास,
बह तव केश-कलाप हमारे हृदय-तिमिर का करै विनाश।।४२।।

शुभ सिन्दूर भरी अति श्यामल केश-पाटियों-मध्य ललाम,
वैरि-बृन्द-कृत बन्दी-सी ज्यों नव आदित्य-किरण छवि-धाम–
जो तव मुख-सौन्दर्य तरङ्ग-प्रवाह-स्रोत की सरणि समान–
है, वह श्रीसीमन्त तुम्हारी करै हमारा नित कल्याण।।४३।।

अरालैः स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकैः ।
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पंकेरुहरुचिम्।।
दरस्मेरे यस्मिन्दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे।
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः।।४४।।

ललाटं लावण्यद्युतिविमलमाभाति तव यद्-
द्वितीयं तन्मन्ये मुकुटघटितं चन्द्रशकलं।।
विपर्यासन्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः।
सुधालेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः।।४५।।

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद्भुवनभयभंगव्यसननि।
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणे।।
धनुर्मन्ये सब्येतरकरगृहीतं रतिपतेः।
प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे।।४६।।

अहं सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया।
त्रियामां वामंते सृजति रजनीनायकमयं।।
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः।
समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोन्तरचरीम्।।४७।।

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः।
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुराभोगवतिका।।
अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया।
ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या विजयते।।४८।।

अलि-शिशुओं सी, स्वतः कुञ्चिता अलकों से शोभाशाली-
तव मुख ने कर कमलों की छवि की बड़ी हँसी है कर डाली।
जिसकी स्मिति से दशन-कान्ति-मयि मधु-सुगन्धि के लतवाले-
मदन-दहन के नयन मधुव्रत हो जाते हैं मतवाले।।४४।।

तव ललाट-लावण्य-विमलद्युति का है जो माँ! परम प्रकाश,
मुकुट-घटित वह मानो दूजा चन्द्रखण्ड का है आभास।
दोनों के विपरीत भाग मिलजाने से त्यों रुचिर अनूप-
सुधा-लेप-प्रवाह होने से होता पूर्ण चन्द्र का रूप।।४५।।

भव-भय-हारिणि! कुटिल भृकुटियें हैं त्वदीय ज्यों धनुष ललाम-
मधुकरमयी युगल नयनों की मौर्वी-युत जो है अभिराम।
बाम पाणि में उसको धारण किये हुए हैं काम निदान,
अतः, उमे! भ्रू-धनुष्य-मध्य में मुष्टि पकड़ने का है स्थान।।४६।।

दिवस प्रकट करता है दक्षिण देवि! सूर्य मय नयन त्वदीय,
करता है उत्पन्न निशा को शशि-मय वाम नयन कमनीय।
किञ्चित् विकसित स्वर्ण-कमल के सम छविशाली नयन तृतीय,
प्रकटित करता दिवस-रात्रि के मध्य प्राप्त सन्ध्या रमणीय।।४७।।

देवि विशाला, कल्याणी, कुवलयातिरुचिर अयोध्या और-
करुणाधारा धारा नगरी, मधुरा, भोगवती शिरमौर।
तथा अवन्ती दृष्टि तुम्हारी जयिनी बहु नगरी विस्तार,
उन-उन नामों से व्यवहृत जो, जय हो उसकी बारम्बार।।४८।।

कवीनां सन्दर्भस्तवकमकरन्दैकभरितं,
कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलम्।
अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नव रसास्वादतरला-
वसूया संसर्गादलिक नयनं किञ्चिदरुणम्।।४९।।

शिवे! शृङ्गारार्द्रा तदितर मुखे कुत्सनपरा,
सरोषा गंगायां गिरिशचरिते विस्मयवती।
हराहिभ्योभीता सरसिरुह - सौभाग्य - जयिनि,
सखीपुस्मेरा ते मयि जननि दृष्टिःसकरुणा।।५०।।

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती,
पुराभेत्तुश्चित्तप्रशमरस विद्रावणफले।
इमेनेत्रे गोत्राधरपति - कुलोत्तंस - कलिके,
तवाकर्णा कृष्टस्मरशरविलासं कलयतः।।५१।।

विभक्त त्रैवर्ण्यव्यतिकरितनीलाञ्जनतया,
विभाति त्वन्नेत्र त्रितयमिदमीशानदयिते।
पुनः स्त्रष्टुं देवान् द्रुहिण हरि रुद्रानुपरतान्।।
रजः सत्वं विभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव।।५२।।

पवित्री कर्तुनः पशुपतिपराधीनहृदये।
दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः ।।
नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममुं,
त्रयाणां तीर्थनामुपनयसि सम्भेदमनघें।।५३।।

कवि-जन-सूक्ति-प्रसून-मञ्जरी की मकरन्द-सुरभि से पूर्ण-
युग कटाक्ष-विस्फुरण-भ्रमर-शिशुनवरस-आस्वादन-हित तूर्ण।
नहीं त्यागते युग कर्णों को - यह तव भाल-नयन लख हाल,
ईर्ष्या करने के कारण से हो जाता है किञ्चित् लाल।।४९।।

शिव में है शृङ्गार-रसार्द्रा, अन्य सुरों में ग्लानिवती,
हर-चरित्र में विस्मयवाली, भव-भुजगों से भीति अती।
कमल-श्री-जय-कारिणि, गंगा पर है रोष-मयी अरुणा,
सखीजनों में हास्य तथा मुझ पर है जननि! दृष्टि करुणा।।५०।।

तव विशाल आकर्ण नयन युग धारे जो पलकों के बाण,
उन्हें खींच कानों तक अपने करता कामदेव सन्धान।
हे हिम-शैल-राज कुल-कलिके! मातः! जिससे अहो! तुरन्त-
हो जाता है त्रिपुर-विनाशक के मन से विराग का अन्त।।५१।।

तीन वर्ण के त्रिविलोचन तव नीलाञ्जन से अति शोभित,
सत्त्व-रजस्तम त्रिगुण-युक्त हैं श्वेत, श्याम एवं लोहित।
काल-धर्म से गत शरीर त्रयदेवों को फिर देह विशेष-
देकर ईश्वर-प्राण-वल्लभे! रचते ब्रह्मा-विष्णु-महेश।।५२।।

पशुपति-पराधीन-हृदये! तव दया-मित्र त्रय नेत्र विशाल,-
हैं, जो तीन वर्ण-मयि द्युति से शोभित श्याम श्वेत औ' लाल।
धारे वे नद शोण-जन्हुजा-यमुना तीर्थों का संगम,
हे अनघे! हम पतित सेवकों को करने को पावन तम।।५३।।

तवापर्णे! कर्णे जपनयनपैशुन्यचकिता,
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः।
इयं च श्रीर्बद्धच्छद पुटकपाटंकुवलयं,
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति।।५४।।

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती,
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये!
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः,
परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः।।५५।।

दृशा द्राघी यस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा,
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे!
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता,
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः।।५६।।

अरालं ते पालीयुगलनगराजन्यतनये!
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम्।।
तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लङ्घ्य विलसन्न-
पाङ्गव्यासङ्गो दिशति , शिरसन्धानधिषणाम्।।५७।।

स्फुरद्गंडाभोग प्रतिफलित ताटङ्क युगलं,
चतुश्चक्रं शंके तव मुखमिदं मन्मथरथम्।
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणं,
महावीरो मारः प्रमथपतये स्वं जितवते।।५८।।

तव कर्णों से लगे दृगों को देख, पिशुनता का भय मान,
पलक बन्द कर डूबी रहती जल में ही मछलियाँ सुजान।
दिन में स्वीय कपाट बन्दकर कुवलय-छवि तज जाती म्लान,
तथा रात्रि में द्वार खोल कर घुस आती है फिर अनजान।।५४।।

तव पलकें खुलने-लगने से होता है भव-उद्भव-संहार,
धरणी-धर-राजन्य-कन्यके! कहते यों सत्पुरुष विचार।
खुलने से भव उद्भव होता, लगने से लय होता मात!
इसी हेतु, रक्षार्थ जगत के, तजा दृगों ने पलक-निपात।।५५।।

विकसित नील कमल-छवि-सी-तव दीर्घ दृष्टि जो है द्युतिमान,
दूरङ्गत मुझ दीन-हीन पर हो जावै वह करुणावान।
इससे मैं तो हो जाऊँगा धन्य, नहीं है कुछ तव हानि,
क्योंकि, बनों में औ' महलों में सम प्रकाश करता शशि दानि।।५६।।

पर्वत-राज-सुते! तव बालीं दोनों शोभित चक्र-समान,
उन्हें न कौन कामदेव के जानेगा कोदण्ड प्रधान?
जिनमें से उल्लंङ्घन करके श्रवण-मार्ग का, तिरछे वेष-
नयन-कटाक्ष आपके करते शर-सन्धान-बुद्धि सविशेष।।५७।।

तव मुख, जिसमें ताटङ्कों से हैं बिम्बित कपोल अभिराम,
उसे मानता मैं मन्मथ का चारु चक्र-युत रथ छवि-धाम।
जिसमें बैठ, रवीन्दु-चक्र-मय भू-रथवाले हर का मन-
करके क्षुब्ध महावीर स्मर हो जाता विजयी तत्क्षण।।५८।।

सरस्वत्याः सूक्तीरमृतलहरी कौशलहरी,
पिबन्त्याः शर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरलम्।
चमत्कारः श्लाघाचलितशिरसः कुण्डलगणो,
भणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते।।५९।

असौ नासावंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटी,
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम्।
वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशिरतरनिःश्वासजनिताः,
समृद्ध्यायस्तासां बहिरपिच मुक्तामणिधरः।।६०।

प्रकृत्या रक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः,
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलताः।
न बिम्बं त्वद्बिम्बप्रतिफलनलाभादरुणितं,
तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया।।६१।

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदन चन्द्रस्य पिबतां,
चकोराणामासीदिति रसतया चञ्चुजडिमा।
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमम्लरुचयः,
पिबन्तिस्वच्छन्दं निशि निशि भृशं काञ्जिकाधिया।।६२।

अविश्रान्तं पत्युर्गुणगण कथाम्रेडनजटा,
जपा पुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयति सा।
यदग्रासीनायाः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी,
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्य वपुषा।।६३।

सरस्वती का सूक्ति-सुधा-मय मनोमुग्ध कर सुन्दर गान-
कर्णों की चुलुकाओं से तुम करने वाली अविरत पान।
करती हो जब परम प्रशंसा, शिर हिलने से कुण्डल-गण,
"झणत्कार' तारों के द्वारा करते हैं मुख से वर्णन।।५९।।

जिसके भीतर हैं शीतल निःश्वास-जनित मुक्ता सविशेष,
त्यों समृद्धि से जिनके, मुक्ता-मणि-धारी हैं बहिः प्रदेश।
हे हिम-गिरि-वर-वंश-पताके! वह यह नासा-वंश त्वदीय,
हम सब दीन-जनों को संतत समुचित फलै सु-फल कमनीय।।६०।।

तव स्वाभाविक लाल अधर का छवि-सादृश्य कौन उपमान,?
विद्रुम-लतिका फल-हीना है और न उन सी शोभावान!
तथा बिम्ब तव अधर-बिम्ब के कभी न है इक कला-समान,
तव अरुणाई पाकर हैं सब लाल वस्तुएँ लज्जावान।।६१।।

तव मुख-शशि की स्मित-ज्योत्स्ना का अमृत पीने से अत्यन्त-
अहो! समस्त चकोरों की हो गई चञ्चुएँ जड़िमावन्त।
ओषधीश की अतः, सुधा-लहरी-काञ्ची को वे नित रात-
पीते हैं, माधुर्य-जनित निज जाड्य-निवारण को अवदात।।६२।।

जो निजपति के ही गुण-गण को जपती रहती बारम्बार,
गुड़हल पुष्प-समान तुम्हारी जयति जननि! जिह्वा सुकुमार।
स्फटिक-तुल्य छविमयी भारती जिस पर रहने के कारण-
करती है माणिक्य-सदृश अति अरुण वर्ण-मय तनु धारण।।६३।।

रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचभि-
र्निवृत्तैश्चण्डांश त्रिपुरहर निर्माल्यविमुखैः।
विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकलाः,
विलुप्यन्ते मातस्तव बदनताम्बूलकणिकाः।।६४।

विपञ्चयागायन्ती विविधमवदातं पशुपतेः,
त्वयारब्धे वक्तुं चलित शिरसा साधुवचने।
त्वदीयैर्माधुर्यैरपहसिततन्त्रीकलरवां,
निजां वीणां वाणी निचुलयतिचोलेन निभृतम्।।६५।

कराग्रेणस्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया,
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया।
करग्राह्यं शंभोर्मुखमुकुरवृत्तं गिरिसुते!
कथङ्कारं ब्रूमस्तव चिबुकमौषम्यरहितम्।।६६।

भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कण्टकवती,
तवग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियम्
स्वतः श्वेता कालागरुबहुलजम्बालमलिना,
मृणाली लालित्यं वहति यदहो हारलतिका।।६७।

गले रेखास्तिस्रो गतिगमक गोतैकनिपुणे,
विवाह व्यानद्धप्रगुणगुण संख्याप्रतिभुवः
विराजन्ते नानाविध मधुररागाकरभुवः,
त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते।।६८।

जीत युद्ध में दैत्य-गणों को, उनके कवच-मुकुट को छीन,
आकर शंभु-प्रसाद-विमुख जो रहे जान चण्डांश-अधीन।
वे ही गुह-हरि-इन्द्र, चन्द्र-सम स्वच्छ खण्ड कर्पूर-समेत,-
मातः! तव ताम्बूल-कणों को करते हैं स्वीकृत समवेत।।६४।।

शम्भु-पराक्रम सरस्वती जब करती है वीणा में गान,
शीश हिलाकर तब तुम उसका 'साधु-साधु' कह करती मान।
इन वचनों की मधुराई से हो जाता तन्त्री-स्वर मन्द,
अतः, उसे कर लेती है वह लज्जित हो खोली में बन्द।।६५।।

हिमगिरि ने वत्सलता-वश है, जिसे किया हाथों से प्यार,
अधर-पान के हेतु शंभु ने जिसे उठाया बारम्बार।
तव मुख-मुकुर-नाल-सा, जिसको शिव ने पकड़ा है सविलास,
उस तव अनुपम चिबुक-कथन का कर सकता है कौन प्रयास?।।६६।।

श्री त्रिपुरारि-भुजालिङ्गन से जो सन्तन कण्टकवाली,-
तव ग्रीवा, मुख-कमल-नाल सी, है सुन्दर छवि की डाली।
स्वतःश्वेत पर कालागरु-लेपन से जो शैवल-सी श्याम,
मुक्ता-माला मञ्जु मृणाली सी वह दिखती है अभिराम।।६७।।

तव, गवि-गमक-गीत-वर-निपुणे! कण्ठ सु-रेखायें जो तीन-
हैं, मांगलिक त्रिसूत्र-'प्रगुण-गुण' वे कन्या-विवाह-कालीन।
वा नाना विध मधुर राग-समूहों की हैं प्रकट स्थान,
अथवा हैं गान्धार-सुमध्यम-षड्ज ग्राम-नियम-सीमान।।६८।।

मृणालीमृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणां,
चतुर्भिः सौन्दर्य सरसिजभवः स्तौति वदनैः।
नखेभ्यः संत्रस्यन् प्रथमदमनादन्धकरिपो-
श्चतुर्णां वक्त्राणां सममभयदानार्पणधिया।।६९।

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतां,
कराणां ते कान्तिः कथय कथयामः कथमुमे!
कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलं,
यदि क्रीडालक्ष्मीचरणतललाक्षारुणदलम्।।७०।

समं देवि! स्कन्दद्विपबदनपीतं स्तनयुगं,
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम्।
यदालोक्याशङ्काकुलितहृदयो हासजनकः,
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति।।७१।

अमू ते बक्षोजावमृतरसमाणिक्यकलशौ,
न सन्देहस्पन्दौ नगपतिपताके! मनसि नः।
पिबन्तौ तौ यस्मादविदितवधूसङ्गमरसौ,
कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ।।७२।

वहत्यम्ब स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः।
समारब्धां मुक्तामणिभिरमालां हारलतिकां।।
कुचाभोगो बिम्बाधररुचिभिरन्तःशबलितां।
प्रतापव्यामिश्रां पुरविजयिनः कीर्तिमिव ते।।७३।

तव चारों भुज-लतिकाएँ हैं मंजु मृणाली-सदृश ललाम,
गाते रहते चारों मुख से चतुरानन जिनके गुण-ग्राम।
क्योंकि, उन्हें अन्धक-रिपु-नख से है पहले का अति ही त्रास,
अतः, चतुर्मुख-रक्षणार्थ निज है वह उनका स्तुति-प्रयास।।६९।।

जिनकी नख-द्युति करती नव शतपत्र-प्रभा का है उपहास,–
उन तव युग कर-छवि का कैसे कर सकता मैं कथन-प्रयास?
यदि खेलती हुई लक्ष्मी के पद-तल-लाक्षा-अरुण ललाम–
नव अम्भोज-दलों से जो हो, तो हो कुछ समता का काम।।७०।।

अम्ब! षड़ानन तथा गजानन करते हैं जिनका सम पान,
जिन्हें देख शङ्काकुल मन से गज मुख अपने मस्तक जान।
निज कुंभों पर शुण्ड फेर कर करवा देते हैं अति हास,
वे पय-पूरित युगल पयोधर हरें हमारे सन्तत त्रास।।७१।।

हे नग-राज-पताके! इसके न है तनिक सन्देह-स्थान,
अमृत-रस-परिपूर्ण तुम्हारे कुच हैं माणिक-कुंभ समान।
जिन्हें पान कर अब तक दोनों हैं कुमार गणनाथ-कुमार,
कामिनि-संगम का जिनके मन कभी न कुछ भी हुआ विचार।।७२।।

देवि! गजासुर-कुम्भ जनित-मुक्ता-मणियों का निर्मल हार–
तव कुच-मण्डल धारण करते (परम मनोहर सुषमा-सार)।
वह तव बिम्बाधर-छाया से, मध्य-भाग में अरुण ललाम–
दिखता, शम्भु-प्रताप-कीर्ति का सम्मिश्रण हो ज्यों अभिराम।।७३।।

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः।
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव।।
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्-
कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता।।७४।।

हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा।
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गौ मनसिजः।।
समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका।
जनस्तां जानीते जननि तव रोमावलिरिति।।७५।।

यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति शिवे।
कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियां।।
विमर्दादन्योन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं।
तनूभूतं व्योम प्रविशदिव नाभि कुहरिणीं।।७६।।

स्थिरो गंगाऽऽवर्तः स्तनमुकुलरोमावलिलता।
तलावालं कुण्डं कुसुमशरतेजो हुतभुजः।।
रतेर्लीलागारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते।
बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते।।७७।।

निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो।
नमन्मूर्तेर्नाभौ बलिषु च शनैस्त्रुट्यत इव।।
चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा।
समावस्थास्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये।।७८।।

गिरि-कन्ये! तव पयोधरों का है जो उत्तम दुग्ध अपार,
वह तव हृत्तल से है निकला सारस्वत-पय-पारावार।
जिसे द्रविड़-शिशु को दयार्द्र हो अम्ब! कराया तुमने पान,
जिससे वह कवियों में सुन्दर काव्य-रचयिता हुआ महान।।७४।।

महादेव की क्रोध-ज्वाला-माला से हो तप्त शरीर–
तव गम्भीर नाभि-सरसी में जाकर मनसिज छुपा अवीर।
हे गिरि-राज-सुते! उससे जो निकली धूप-लता अत्यन्त,
उसको ही संसार समझता है तव रोमावलि द्युतिमन्त।।७५।।

गिरिजे! यमुना सूक्ष्म-बीचि-सी कोई नीली वस्तु ललाम–
तव कृश मध्य-भाग में भासित होती है सुधियों को क्षाम।
कुच-कलशों के बीच, उन्हीं के संघर्षण से पिस सविशेष–
पूर्ण हुआ नभ करता तव गम्भीर 'कुहरिणी' नाभि-प्रवेश।।७६।।

मदन-तेज का अग्नि-कुण्ड है, गङ्गा का है स्थिर-आवर्त्त,
कुच-कलियों की रोमलता के है वा आलवाल का गर्त्त।
गिरि-सुते! तुम्हारी वह गम्भीर अति जयति नाभि रति-लीलागार,
शिव के नयनानन्द-सिद्धि की जो है शैल-गुहा का द्वार।।७७।।

स्वाभाविक जो क्षीण, गमन में झोका खाती स्तन के भार,
नाभि और त्रिवली-स्थानों में पतली है जो अति सुकुमार।
एवं सरिता तट के टूटे झुके हुए जो वृक्ष समान,
शैल-बालिके! उस तव कटि की सदा कुशलता रहे महान।।७८।।

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजा-
न्नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे।।
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं।
नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च।।७९।।

कुचौ सद्यः स्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ।
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता।।
तव त्रातुं भंगादलमिति विलग्नं तनुभुवा।
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलि लवलीवल्लिभिरिव।।८०।।

करीन्द्राणां शुण्डान् कनककदलीकाण्डपटली।
मुभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती।।
सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते।
विजिग्ये जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि।।८१।।

पुरा जेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते।
निषङ्गौ ते जंघे विषमविशिखो बाढमकृत।।
यदग्रे दृश्यन्ते शितशरफलाः पादयुगली-
नखाग्रच्छद्मानः सुरमुकुटशाणैकनिशिताः।।८२।।

श्रुतीनां मूर्द्धानो दधति तव यौ शेखरतया।
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ।।
ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी।
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडामणिरुचिः।।८३।।

निज गुरुत्व-विस्तार स्वगृह से पार्वति! तव पितु गिरि हिमवान-
तव उद्वाह-समय दहेज में सारा है कर दिया प्रदान।
अतः, इसी कारण से हैं जो तव युग गुरु-विस्तीर्ण नितम्ब-
वे सब पृथ्वी को स्थिर करते, देते उसको लघुता अम्ब।।७९।।

तव कुच, यौवन मद-ऊष्मा के जल-कण से अति शोभावन्त-
सुदृढ़ कंचुकी को भेदन कर हैं जो बाहु-मूल पर्यन्त।
कामदेव ने कनक-कलश-सम उनकी अति गुरुता सुविचार,
त्रिवली-वल्ली-द्वारा उनके मध्य कस दिया भले प्रकार।।८०।।

करि-वर-शुण्डों को त्यों कांचन-कदली काण्डों को अविलम्ब-
दोनों जङ्घाओं से दोनों को जय कर लेती तुम अम्ब!
पति-प्रणाम से कठिन गोल युग जो हैं तव पिंडली द्युतिमन्त-
उनसे जय कर लेती हो तुम सुर-गज-कुम्भों को अत्यन्त।।८१।।

प्रथम रुद्र-विजयार्थ, तुम्हारी जङ्घाओं के कर तूणीर-
उनमें अपने बाण द्विगुणा कर, रखता हुआ पञ्चशर वीर।
जिनके अग्रभाग चरणांगुलि-नख-मय-फल हैं ज्योतिष्मान
किये गये जो अधिक तीक्ष्ण हैं, चढ़कर सुर-मुकुटों की शान।।८२।।

जिन्हें उपनिषद् धारण करते निज शिर पर, आभूषण मान,
मेरे सिर पर भी रखिये निज मातः वे पद दया-निधान।
पशुपति-जटा-जूट की गङ्गा जिनका है पाद्याम्बु विशेष,
तथा अरुण हरि-चूड़ा-मणि-छवि है जिनकी लाक्षा-श्री-लेश।।८३।।

हिमानीहन्तव्यं हिमगिरि तटाक्रान्तचतुरौ।
निशायां निद्राणं निशि च परभागे च विशदौ।।
परं लक्ष्मीपत्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां।
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम्।।८४।।

नमो वाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तावास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते।।
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृह्यते।
पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्केलितरवे।।८५।।

मृषा कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं।
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयति ते।।
चिरादन्तः शल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता।
तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा।।८६।।

पदं ते कान्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां।
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलां।।
कथंचिद्बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरमिदा।
यदादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा।।८७।।

नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोचशशिभि-
स्तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ।।
फलानि स्वस्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददतां।
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमन्हाय वदतौ।।८८।।

हिम से नष्ट कमल होते, पर जो हिम-गिरि पर हैं छविमान,
कमल निमीलित निशि में होते, पर जो निशिदिन शोभावान।
कमल रमा के पात्र, समयि जन को करते पर जो श्री-दान,
ऐसे तव पद-पद्म-जयी माँ! इसमें कुछ आश्चर्य न जान।।८४।।

नयनानन्द जनक तव चरणों को करते हम नित्य प्रणाम-
जो कि रुचिर रस-युक्त महावर से अतिशय हैं शोभाधाम।
जिनके ताड़न की अभिलाषा रखने से निज हृदय-प्रदेश,
सदा प्रमद-बन के अशोक-तरु से करते हैं द्वेष महेश।।८५।।

तुमसे अन्य बधू का मिथ्या नाम-ग्रहण से लज्जावान,
तव पद-पद्मों से तव भर्त्ता शम्भु-भाल को ताड़ित जान।
पूर्व दहन-कृत मनः शल्य से दुःखित चिर वैरी वह मार-
नूपुर ध्वनि-मिस 'सिंहनाद' कर गरजा करता बारम्बार।।८६।।

विपद अपद-कर तवपद कोमल जो हैं अनुपम कान्ति स्थान,
उन्हें सुधी-गण कैसे कहते कठिन कमठ की पीठ समान?
त्यों विवाह में दया-युक्त मन से शिव ने कर उन्हें ग्रहण-
निज हाथों से पत्थर पर हैं किया अहो! कैसे स्थापन।।८७।।

नख-शशि से करते सुर-ललना-कर कमलों का बन्द विकास,
तथा कल्पपादप का करते चण्डि! तुम्हारे पद उपहास।
करता-सुरु-तरु स्वर्ग-वासियों को किसलय-कर से फल-दान,
सभी दरिद्रों को पर तव पद करते निशिदिन लक्ष्मीवान।।८८।।

कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं।
पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम्।।
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया।
यदा धत्ते वाणी मुखकमलताम्बूलरसताम्।।८९।।

पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनस-
श्चरन्तस्ते खेलं भवनकलहंसा न जहति।।
स्वविक्षेपे शिक्षां सुभगमणिमञ्जीररणित-
च्छलादाचक्षाणं चरणकमलं चारुचरिते।।९०।।

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनुसदृशी-।
ममन्दं सौन्दर्यं प्रकरमकरन्दं विकिरति।।
तवास्मिन्मन्दारस्तबकसुभगे यातु चरणे।
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणः षट्चरणताम्।।९१।।

अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहासिते।
शिरीषाभां गात्रे दृशदिव कठोरा कृचतटे।।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये।
जगत्त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा।।९२।।

पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः।
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा।।
तथा ह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां।
तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः।।९३।।

मां! हम विद्यार्थी-गण कहिये मंजु महावर शुचि रसवान,
चरण-कमल-प्रक्षालित जल तव अहा! करेंगे कब नित पान?
स्वाभाविक जो मूकों को भी, कविता करने के कारण-
करता गिरा मुखाम्बुज की ताम्बूल रुचिरता है धारण।।८९।।

पद-विन्यास-ललित क्रीडा का करने को मन से अभ्यास,
खेल-निरत गृह-राजहंस रहते तव पद-कमलों के पास।
उनको मणि-नूपुर-ध्वनि-मिस तुम देतीं शिक्षा भले प्रकार,
अतः, न तजते तुम्हें कभी वे शिक्षा में विक्षेप-विचार।।९०।।

जो दीनों को लक्ष्मी देते, उनकी इच्छा के अनुकूल,
जो अमन्द सौन्दर्य-रूप मकरन्द बहाते मंजुल फूल।
उन मन्दार-कुसुम गुच्छक सम तव युगचरणों में अभिराम,
षट् इन्द्रिय-पद-युक्त जीव मम षट्पद-सा हो रत वसुयाम।।९१।।

केशों से अत्यन्त कुटिल जो मन्द हास्य से सरल विशेष,
सुम शिरीष-आभा-सी मृदुतनु, कठिन कुचों से ज्यों शैलेश।
कटि से अतिशय क्षीण तथा जघनों से जो है पीन महान,
वह महेश की कोई अरुणा करुणा करै जगत का त्राण।।९२।।

महादेव की पट्ट महारानी होने के ही कारण,
अजितेन्द्रिय पुरुषों को है दुष्प्राप्य तुम्हारा चरणार्चन।
पर, तव अन्तिम गृह-द्वार पर अणिमादक का जो है स्थान,
हो जाते इन्द्रादि अमर-गण अहो! वही से सिद्धि-निधान।।९३।।

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः।
शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः।।
त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया,।
शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धिकुतुकं।।९४।।

कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं।
कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निविडितं।।
अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं।
विधिर्भूयो भूयो निविडयति नूनं तव कृते।।९५।।

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितो, ।
निषेवे नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः।।
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो,।
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम्।।९६।।

समुद्भूतस्थूलस्तनभरमुरश्चारुहसितं, ।
कटाक्षे कन्दर्पाः कतिचन कदम्बद्युति वपुः।।
हरस्य त्वद्भ्रान्तिं मनसि जनयन्ती सुवदने
भवन्त्यां ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे।।९७।।

कलत्रं वैधात्रं कति कति भजन्ते न कवयः।
श्रियो देव्यां: को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः।।
महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे।
कुचाभ्यामासंगः कुरबकतरोरप्यसुलभः ।।९८।।

देवि! तुम्हारे मञ्च-पाद हैं, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईशान,
तथा सदाशिव निर्मल छाया-घटित कपट-आस्तरण प्रधान।
तव अङ्गों की अरुण-प्रभा से प्रतिबिम्बित वह हैं, श्रुङ्गार-
मानों मूर्तिमान हो करता नयन-कुतूहल बारम्बार।।९४।।

मरकत मणि-निर्मित, जल-भय यह गन्ध-पात्र है शशि मण्डल,
जिसमें मृग मद है कलङ्क, कर्पूर कलाओं का निर्मल।
उसे त्वदीय भोग से प्रतिदिन कृष्णपक्ष में घटता जान-
शुक्लपक्ष में फिर उसको विधि करते हैं पूर्णत्व प्रदान।।९५।।

स्वीय शरीर-प्रकट किरणवलि औ' अणिमादिक से वेष्टित,
तव स्वरूप की 'अहं' भावना करता है जो नित्ये! नित।
वह शिव की समृद्धि को तृणवत् गिनता-इसमें क्या आश्चर्य?
प्रलयानल से भी नीराजन करता है वह साधक-वर्य्य।।९६।।

उर पर पीन पयोधर होते, हो जाता अति सुन्दर हास,
बहु मनोज कटाक्ष में रहते, होता तनु कदम्ब-सा भास।
उमे! तुम्हारे भक्त-जनों का ऐसा हो जाता परिणाम,
जो शिव-मन को भ्रान्त बनाता धारण कर तव रूप ललाम।।९७।।

विधि की गृहिणी सरस्वती के कौन न पति हैं कवि मतिमान?
लक्ष्मी देवी के भी होते कौन न पति जग में धनवान?
सति! सतियों में अग्रगण्य तुम केवल महादेव को त्याग,
कुरबक-तरु को भी अलभ्य अति है छू लेना तव कुच-भाग।।९८।।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो।
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयां।।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा।
महामाये विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि।।९९।

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते।
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।।
चिरं जीवन्नेषः क्षपितपशुपाशव्यतिकरः।
परब्रह्माभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्।।१००।

निधे नित्यस्मेरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे।
निराघातज्ञाने नियमपरचित्तैकनिलये।।
नियत्या निर्मुक्त निखिलनिगमान्तस्तुतिपदे।
निरातंके नित्ये निगमय ममापि स्तुतिमिमाम्।।१०१।।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः ।
सुधासूतेश्चचन्द्रोपलजललवैरर्घ्यघटना ।।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधसौहित्यकरणं।
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम्।।१०२।।

विधि की पत्नी तुम्हें भारती कहते आगम के विद्वान्
हरि की गृहिणी रमा, शम्भु-सहचरी करैं गिरिसुता बखान।
पर कोई हो आप तुरीया महिमा तव दुर्ज्ञेय, अपार,
परब्रह्म-पटरानि! भ्रमातीं तुम्हीं महामाये! संसार।।९९।।

गिरा-रमा-पति हो, करता विधि-विष्णु-समत्व-समान विहार,
सुन्दर तनु से करता है रति-पातिव्रत्य शिथिल बेकार।
चिरजीवी हो पशु-पाशों से, होता रहित सदा तव भक्त-
परब्रह्म-नामक-रस-आस्वादन में रहता त्यों अनुरक्त।।१००।।

निधे! नित्य मुसकानमुखी, निःसीमगुणा हो, नीति-प्रवीण,
है स्वतन्त्र तव ज्ञान तथा तुम नियमि-जनों के हृदयासीन।
नियति-विहीने! करते सब उपनिषद् त्वदीय चरण-गुण-गान,
अम्ब! निर्भया,नित्या, तुम-यह ममनुति निज-श्रुति-मध्य गृहाण।।१०१।।

दीप ज्योतियों से करना ज्यों दिनकर का आर्तिक्य-विधान
यथा सुधाकर को करना शशि-मणि जल-कण से अर्घ्य-प्रदान।
जलनिधि का उसके ही जल से करना तर्पण तथा यथैव,
तव वाणी से करना यह तव वाग्रूपिणि! है स्तवन तथैव।।१०२।।

भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य प्रणीता

आनन्द-लहरी

(हिन्दी पद्यानुवाद-सहिता)

अनुवादक

साहित्य-भूषण

श्री बलवीर सिंह फौजदार

दतिया (म.प्र.)

आनन्द-लहरी

हिन्दी

भवनिः! स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः,
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषांकथयकथमस्मिन्नवसरः?।।१।।

घृत-क्षीर-द्राक्षा-मधु-मधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसना-मात्र-विषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिव-दृङ्-मात्र-विषयः,
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे?।।२।।

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जल-कला,
ललाटे काश्मीरं विलसतिगले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितट हाटक मयी,
नमामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्।।३।।

आनन्द-लहरी

हिन्दी

हे भवानि! तव नुति करने में चार मुखों से देव प्रजेश,
पाँच मुखों से शङ्कर, छै से स्कन्द और सहस्र से शेष–
है असमर्थ, कौन? फिर कैसे अन्य-एक अनजान?
अवसर प्राप्त कहो कर सकते? करने का तव महिमा-गान।।१।।

घृत-पय-द्राक्षा-मधु-मिठास को कोई भी पद-शब्द विशेष–
बता न सकता, उसको तो है एक जानता जिह्वा-देश।
तव सौन्दर्य परमशिव का है नयन-विषय, बस इसी प्रकार,
कैसे उसको कह सकते? कह पाते वेद न जिसको चार।।२।।

मुख ताम्बूल-लसित, कज्जल की रेखा शोभित नयन युगल,
केसर-तिलक भाल में, ग्रीवा में है मुक्ता-माल विमल।
लसै हेम साड़ी कटि-तट में, उस कल काञ्ची अभिराम,
ऐसी तुम गिरिराज-किशोरी गौरी को है सदा प्रणाम।।३।।

विराजन्मन्दार- द्रुम- कुसुम- हारस्तन-तटी,
नदद्वीणा-नाद श्रवण विलसत्कुण्डल-गणा।
नताङ्गी मातङ्गी-रुचिरगति-भंगी भगवती,
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते॥४॥

नवीनार्क भ्राजन्मणि-कनक-भूषा-परिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गी-रुचिर नयनाङ्गीकृत शिवा।
तडित्पीता पीताम्बरललित मञ्जीरसुभगा,
ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी॥५॥

हिमाद्रेः सम्भूता सु-ललित करैः पल्लव-युता,
सुपुष्पा मुक्ताभि र्भ्रमरकलिता चालक भरैः।
कृत स्थाणुस्थाना कुच-फल-नता सूक्ति-सरसा,
रुजां-हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका॥६॥

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादर मिह,
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः,
पुराणोऽपिस्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥७॥

विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलामनाय-जननी,
त्वमर्थानां मूलं धनद-नमनीयांध्रिकमले!
त्वमादिः कामानां जननि! कृत कन्दर्पविजये,
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परम ब्रह्ममहिषी॥८॥

पारिजात-पुष्पों की माला सोह रही कुच युग्म-निकट,
वीणा-नाद-श्रवण-भूषित कर्णों के कुण्डल दिव्य प्रकट।
झुके अङ्ग, करिणी-सी मृदुगतिवाली भगवति सती प्रधान,
चञ्चल कलम-ऋषी शिव-भार्या उमा विजयिनी रहें महान।।४।।

हैं नव उदित सूर्य-से जिनके तनु पर मणि-स्वर्णालङ्कार,
* मृगियों-से सुन्दर दृग जिनके, किया शंभु को पति स्वीकार।
विद्य त्पीता, पीताम्बर-युत, नूपुर चरणों में छवि-मूल,
वही अपर्णा, अति सुख-पूर्णा मुझ पर रहैं सदा अनुकूल।।५।।

हिमगिरि से उत्पन्न हुई है, मंजु करों से पल्लववान,
मुक्ता-हार मनोज्ञ सुमन-मय अलकें भ्रमरावली निदान।
सदा स्थाणु-आश्रित है, कुच-फल-नमिता, मधुर-सूक्ति-रसखान,
रुज-शमनी, गमनी शोभित है चिदानन्द-मयि लता प्रमाण।।६।।

अन्य सपर्णा, कुछ गुण-युक्ता लतिका का करते आदर,
किन्तु, हमारा तो केवल हैं सा निश्चित मत सुखकर।
एक अपर्णा का ही जग में समुचित सेवन है प्रतिपल;
जिससे 'स्थाणु' पुराना भी वेष्टित हो फलता मुक्ति सुफल।।७।।

सभी आगमों को प्रकटाती; करती हो धर्मों की सृष्टि,
करते धनद पदाम्बुज-बन्दन, करती तुम सब वैभव-वृष्टि।
काम-विजयिनी, जननि! कामनाओं की आदि तुम्हीं हो जात,
परमब्रह्म-महिषी, सत्पुरुषों की तुम मुक्ति-बीज विख्यात।।८।।

* १ ब्रह्मा। अथवा – जिन कल्याणी ने मृगियों के किये रुचिर दृग अङ्गीकार।

प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽह मधुना।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे,
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः।।९।।

कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधु-चरिते!
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरण-दीक्षामुपगते।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका,
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः?।।१०।।

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे,
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे!
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं,
निरालम्बो लम्बोदरजननि! कं यामि शरणम्।।११।।

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेम-पदवीं,
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि,
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्।।१२।।

त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियम-
स्त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं 'नक्तं' दिवमुचितमीशानि! कुरु तत्।।१३।।

मेरा मन चञ्चल है, इससे हो न सकी मुझ से तव भक्ति,
आप श्रीमती किन्तु, कीजिये मुझ पर दया-दृष्टि-अनुरक्ति।
देता मधुर वारि मुख में धन, चातक चाहे करै न प्रेम,
मुझे बड़ी शङ्का है, किस विधि मम मति तुम में लये सनेम?।।९।।

सभी जानते इसको, मैं ले चुका शरण-दीक्षा तव मात!
अब न उपेक्षा-योग्य रहा, मुझ पर हो करुणा-दृष्टि-निपात।
साधु-चरित्रे! कल्पलता यदि कर न सके सु-कामना-पूर्ति,
तो सामान्य लताओं से फिर उसमें क्या विशेष है स्फूर्ति?।।१०।।

तव पद-कमल युगल में मेरा गिरिजे! है अतीव विश्वास,
मैंने कभी न किसी देव के आश्रय की रक्खी है आस।
तो भी मेरे-हेतु आपके हृदय न हो यदि दया-विकास,
निरालम्बहेरम्ब-जम्ब! हा, जाऊँ मैं फिर किसके पास?।।११।।

ज्यों पारस के छू जाने पर लोहा बन जाता है स्वर्ण,
ज्यों गलियों का जल गङ्गा में मिल हो जाता शुचि समवर्ण।
भिन्न-भिन्न पापों से मम मन मलिन हुआ भी त्यों अत्यन्त,-
है तव प्रेम-निमग्न, न क्यों फिर होगा निर्मल शोभावन्त?।।१२।।

तुम से अन्य किन्ही देवों से मन-इच्छित फल मिल ही जाय,
नियम न यह, परन्तु देती तुम वांछाधिक वैभव-समुदाय।
इस प्रकार कहा करते हैं ब्रह्मादिक सुर-मुनि प्राचीन,
करो उचित ईशानि! अतः, अब मम मन रहता तुम में लीन।।१३।।

स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्ति प्रतिफल-
त्त्वदाकारं चञ्चच्छशधरकलासौघशिखरम्।
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं विजयते,
तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणी।।१४।।

निवासः कैलासे विधि-शतमखाद्याः स्तुतिकराः,
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः।
महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये!
न ते सौभाग्यस्यक्त्रचिदपि मनागस्तितुलना।।१५।।
बृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं,
श्मशानं क्रीडा-भूर्भुजगनिवहो भूषण विधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदितस्यैश्वर्यं तव जननि! सौभाग्य-महिमा।।१६।।

अशेष ब्रह्माण्ड प्रलयविधिनैसर्गिकमतिः,
श्मशानेष्वासीनः कृत भसित-लेपः पशुपतिः।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोल कृपया,
भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि! कलये।।१७।।

त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया,
भियैवासीद्गंगा जलमयतनुः शैलतनये!
तदेतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया,
प्रतिष्ठामातन्वन्निजशिरसिवासेन गिरिशः।।१८।।

विविध रत्न-मय स्फटिक भित्ति पर प्रतिबिम्बित है तव आकार,
जिसके महल-कलश पर शोभित चन्द्र-कला है भले प्रकार।
त्रिभुवन-महाराज शिव-गृहिणी! विधि, हरि, इन्द्र प्रभृति परिवार-
जिसे खड़े घेरे रहते, वह विजयी है तव रम्यागार।।१४।।

तव निवास कैलास, इन्द्र, विधि-आदिक करते तव गुण-गान,
हे त्रैलोक्य-कुटुम्ब, सिद्धियाँ हाथ जोड़ कर खड़ी निदान।
हे शैलाधिराज-तनये! तव देखो हैं प्राणेश महेश,
हो सकती है कहीं न कुछ भी तव सौभाग्य-तुल्यता लेश।।१५।।

वृद्ध बैल ही वाहन, भोजन विष ही है, दिग्वस्त्र प्रधान,
आभूषण हैं भुजग-बृन्द ही, क्रीड़ा-भू है महाश्मशान।
सब सामग्री स्मररिपु की यह, फिर जौ हैं ऐश्वर्य निधान,
वह सौभाग्य तुम्हारे की माँ! महिमा है जग विदित महान।।१६।।

जिनका है स्वभाव करने का सब ब्रह्माण्डों का संहार,
भस्म-लिप्त, जो पशुपति हैं की चिता भूमि बैठक स्वीकार।
भू-मण्डल पर सदय-हृदय हो, किया कण्ठ में विष-धारण,
हे कल्याणि! समझता उसको मैं तव संगति का कारण।।१७।।

हे धरणी-धर राग-सुते! तव सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य निहार,
हो भय-भीत स्वतः गङ्गा ने जल-मय तनु कर लिया विचार।
अतः, सुरसरी वदन-कमल को देख दीन, कर कृपा अपार–
शिव ने अतिशय मान बढ़ाया, उसको अपने शिर पर धार।।१८।।

---

१ गणेश-जननि!

विशाल श्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-
प्रसून व्यामिश्रं भगवति! तवाभ्यङ्गसलिलम्।
समादाय स्रष्टा चलित पदपांसून्निज करैः,
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम्।।१९।।

वसन्ते सानन्देकुसुमित लताभिः परिवृते,
स्फुरन्नाना पद्मे सरसि, कल-हंसालिसुभगे।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलित जले,
स्मरेद्यत्वां तस्य ज्वर-जनित पीडापसरति।।२०।।

चन्दन-रस, कस्तूरी केसर के मिश्रित हैं जिसमे फूल,-
उस अनुलेपन के जल को त्यों चलते हुए पदों की धूल।
लेकर अपने कर से ब्रह्मा रचते भगवति! सुषमा-सार-
सुर-पुर की नव कमल-लोचनी सुन्दरियों की सृष्टि अपार।।१९।।

ऋतु बसन्त में पुष्पित नव लतिकाओं से आवृत सुन्दर-
विविध कमल-कल हंस-मण्डली-मण्डित सरवर के भीतर।
मलय वायु-आन्दोलित जल में खेल रही सखियों के सङ्ग,
स्मरण करै जो तुमको, उसकी ज्वर कृत पीड़ा होती भङ्ग।।२०।।

***